तो उसे अपने आदि स्वरूप के 'सत्' और 'चित्' की अनुभूति तो हो सकती है, परंतु 'आनन्द' अंश की अनुभूति नहीं हो सकेगी। ऐसा ज्ञानयोग में पूर्ण पारंगत योगी तक भक्तकृपा से भक्तियोग में प्रवृत्त हो सकता है। उस समय निराकारवाद का सुदीर्घकालीन अभ्यास भी दुःखदायी सिद्ध होता है, क्योंकि एक बार अपनाकर फिर इस धारणा को पूर्णरूप से त्यागना कठिन है। इस प्रकार निराकारवाद बद्धजीव के लिए साधन-अवस्था में ही नहीं, सिद्धावस्था में भी क्लेशदायी है। जीव को आंशिक स्वतन्त्रता मिली हुई है; अतः उसे निश्चित रूप में यह जान लेना चाहिये कि यह निराकार अनुभूति वस्तुतः उसके चिदानन्दमय स्वरूप के विपरीत है। अतएव यह पथ ग्रहण नहीं करना चाहिए। जीवमात्र के लिये कृष्णभावना का पथ, जिसमें पूर्ण रूप से भक्तियोग के परायण हो जाना होता है, सर्वोत्तम है। इस भक्तियोग की उपेक्षा करने से अनीश्वरवादी हो जाने का भय है। अस्तु, जैसा श्लोक में कहा जा चुका है, निराकार, अव्यक्त, अचिन्त्य तथा इन्द्रियों से अगोचर तत्त्व के ध्यान की पद्धति को किसी भी काल में, विशेषतः वर्तमान कलियुग में प्रोत्साहित करना ठीक नहीं; भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका परामर्श नहीं दिया है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।६।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।७।।

ये=जो; **तु**=किन्तु; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **कर्माणि**=कर्मों को; **मयि**=मुझ में; **संन्यस्य**=अर्पण करके; **मत्पराः**=मेरे परायण हुए; **अनन्येन**=अनन्य; **एव**=ही; **योगेन**=भक्तियोग के अभ्यास से; **माम्**=मुझको; **ध्यायन्तः**=निरन्तर चिन्तन करते हुए; **उपासते**=भजते हैं; **तेषाम्**=उन; **अहम्**=मैं; **समुद्धर्ता**=उद्धार करने वाला; **मृत्युसंसारसागरात्**=मृत्युरूप संसार-सागर से; **भवामि**=होता हूँ; **न चिरात्**=अति शीघ्र; **पार्थ**=हे अर्जुन; **मयि**=मुझ में; **आवेशितचेतसाम्**=एकान्तभाव से अनुरक्त चित्त वाले भक्तों का।

अनुवाद

जो सम्पूर्ण कर्मों को मेरे अर्पण करके और अनन्य भक्तियोग के परायण होकर नित्य-निरन्तर मेरा ही भजन-चिन्तन करते हैं, मुझ में एकान्त भाव से अनुरक्त मन वाले उन भक्तजनों का हे पार्थ ! मैं जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागर से अति शीघ्र उद्धार करता हूँ।।६-७।।

तात्पर्य

स्पष्टतः भक्तजनों के सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि श्रीभगवान् स्वयं अति शीघ्र भवसागर से उनका उद्धार करने वाले हैं। शुद्ध भक्तियोग इस सत्य की अनुभूति करा देता है कि श्रीभगवान् परम महिमामय हैं और जीव उनका नित्यदास है। वास्तव में श्रीभगवान् की सेवा करना जीव का स्वरूपभूत धर्म (कर्तव्य) है; यदि वह